



मौर्यकालीन व्यापार व्यवस्था : एक विहंगमावलोकन

प्रो० आशा रानी, इतिहास विभाग, कु० मायावती राजकीय महिला महाविद्यालय, बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर कु० प्रीति रानी शर्मा, शोध छात्रा, इतिहास विभाग, कु० मायावती राजकीय महिला महाविद्यालय, बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर	Citation: रानी, . आशा ., & शर्मा, . प्रीति . रानी . (2026). मौर्यकालीन व्यापार व्यवस्था : एक विहंगमावलोकन. Innovative Research Thoughts in Social Sciences, 2(2), 230-236. DOI:https://doi.org/10.5281/zenodo.23414342
--	---

सारांश

मौर्यकालीन व्यापार व्यवस्था प्राचीन भारत की आर्थिक संरचना का एक महत्वपूर्ण अंग थी, जो चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार तथा अशोक के शासनकाल (लगभग 321 ई.पू. से 185 ई.पू.) में अत्यन्त विकसित रूप धारण कर चुकी थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा मेगस्थनीज की इन्दिका जैसी स्रोत सामग्रियों से इसकी विस्तृत जानकारी मिलती है। राज्य द्वारा नियन्त्रित यह व्यवस्था आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार दोनों को प्रोत्साहित करती थी, जिसमें सड़कों, बाजारों तथा कर प्रणाली का विशेष योगदान था। मौर्य साम्राज्य में आन्तरिक व्यापार मार्गों के जाल द्वारा समर्थित था। उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ जैसे प्रमुख मार्ग व्यापारिक गतिविधियों के केंद्र थे, जिनकी सुरक्षा के लिए राज्य द्वारा चौकियों एवं गश्त की व्यवस्था की जाती थी। पण्यध्यक्ष नामक अधिकारी वस्तुओं के मूल्य निर्धारण, गुणवत्ता जाँच एवं बिक्री लाइसेंस प्रदान करता था। राज्य की कारखानों से उत्पन्न वस्तुएँ (राजपण्य) नियन्त्रित बाजारों (पण्यसलाह) में बेची जाती थीं, जहाँ उत्पादन स्थल पर ही बिक्री निषिद्ध थी। इससे सट्टेबाजी, मिलावट एवं मूल्य वृद्धि पर रोक लगाई जाती थी। कर प्रणाली व्यवस्थित थी—देशी वस्तुओं पर 1/4 से 1/5 तक व्याजी (टोल टैक्स) तथा आयातित वस्तुओं पर 10% बिक्री कर वसूला जाता था। व्यापारी संघ (श्रेणियाँ या गिल्ड्स) सक्रिय थे, जो उत्पादन, वितरण एवं ऋण सुविधाएँ प्रदान करते थे। प्रमुख निर्यातनीय वस्तुएँ कपड़ा, धातु, रत्न, हाथीदाँत एवं लकड़ी थीं। मौर्यकाल में बाह्य व्यापार विशेष रूप से फला-फूला। ताम्रलिप्ति, भरुकच्छ, सुपारा एवं मुचिरिपट्टन जैसे बंदरगाह समुद्री व्यापार के केंद्र बने। यूनान, सीरिया, मिस्र, अरब, श्रीलंका एवं दक्षिण-पूर्व एशिया से व्यापारिक संबंध थे। निर्यात में भारतीय मसाले, रत्न, नील, रेशम एवं हाथीदाँत प्रमुख थे, जबकि आयात में घोड़े, मदिरा, सोना, चमड़ा एवं रत्न प्राप्त होते थे। चन्द्रगुप्त एवं बिन्दुसार के यूनानी राज्यों से मैत्रीपूर्ण संबंधों ने इसे प्रोत्साहन दिया। पाटलिपुत्र में विदेशी व्यापारियों के लिए विशेष समिति कार्यरत थी, जो उनकी सुविधा सुनिश्चित करती थी। मेगस्थनीज के अनुसार, व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में था। राज्य व्यापार का प्रमुख नियामक था, जो मूल्य स्थिरीकरण एवं उपभोक्ता हितों की रक्षा करता था। पण्यध्यक्ष के अतिरिक्त समाहर्ता एवं संनिधाता जैसे अधिकारी कर संग्रह एवं भंडारण संभालते थे। हालाँकि, कठोर नियन्त्रण से कभी-कभी व्यापारिक स्वतंत्रता प्रभावित होती थी। कुल मिलाकर, मौर्यकालीन व्यापार व्यवस्था ने साम्राज्य को आर्थिक रूप से समृद्ध बनाया, जो बाद के कालों के लिए आधार बनी। इसकी केंद्रीकृत संरचना आधुनिक नियोजन की प्रेरणा देती है।

प्रमुख शब्द : मौर्यकालीन व्यापार व्यवस्था, अर्थशास्त्र, आन्तरिक व्यापार मार्ग (उत्तरापथ, दक्षिणापथ), पण्यध्यक्ष, व्याजी (टोल टैक्स), श्रेणियाँ (व्यापारी संघ), निर्यात वस्तुएँ (कपड़ा, रत्न, हाथीदाँत), विदेशी बंदरगाह (ताम्रलिप्ति, भरुकच्छ)

मौर्यकालीन व्यापारिक मार्ग

व्यापार मौर्यकाल में अचानक विकसित नहीं हुआ अपितु यह लम्बे आर्थिक परिवर्तन का एक हिस्सा था जिसकी शुरुआत मौर्यकाल से पहले हो चुकी थी। जातक कथाओं में बार-बार ऐसे व्यापारियों के काफिलों का वर्णन आता है जो काफी मात्रा में सामान देश में एक हिस्से से दूसरे में पहुँचाते थे। इस काल में भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों के एक शासनसूत्र में बँधने से व्यापार को और अधिक प्रोत्साहन मिला। प्रशासनिक एवं सैनिक आवश्यकता के कारण यातायात-मार्ग में वृद्धि हुई तथा मार्गों की सुरक्षा भी बढ़ी। कृषि तथा उद्योगों के लिए वस्तुएँ देश के विभिन्न भागों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुँचती थी। उत्तर पश्चिमी भाग यूनानियों के अधिकार से मौर्यों के अधिकार में आ गया। दक्षिण की विजय से दक्षिण और पश्चिम व्यापार-मार्ग पर मौर्यों का नियंत्रण हो गया। मेगस्थनीज के विवरण से स्पष्ट है मार्ग-निर्माण का एक विशेष अधिकारी था जो एग्रोनोमोई (**Agronomot**) कहलाता था। ये सड़कों की देखरेख करते थे और 10 स्टेडिया की दूरी पर एक स्तंभ खड़ा कर देते थे। साम्राज्य के राजमार्गों में उत्तर-पश्चिम को पाटलिपुत्र से मिलाने वाला राजमार्ग था। मेगस्थनीज के अनुसार इसकी लंबाई 1300 मील थी। पाटलिपुत्र के आगे यह मार्ग ताम्रलिप्ति (तामलूक) तक जाता था। हिमालय की ओर जानेवाले मार्ग की तुलना दक्षिण को जानेवाले मार्ग से करते हुए कौटिल्य ने दक्षिण-मार्ग अधिक लाभदायक बताया है क्योंकि दक्षिण से बहुमूल्य व्यापार की वस्तुएँ जैसे मुक्ता, मणि, हीरे, सोना, शंख इत्यादि आते थे। दक्षिण के लिए एक पुराना मार्ग श्रावस्ती से गोदावरी के तटवर्ती नगर प्रतिष्ठान तक जाता था। इसी मार्ग को संभवतः उत्तरी मैसूर तक आगे बढ़ाया गया। कृष्णा, गोदावरी और तुंगभद्रा के किनारे होते हुए कई मार्ग व्यापार एवं सैनिक अभियान तथा शासन की आवश्यकता के अनुसार बनाए गए होंगे। उत्तर की ओर एक पुराना मार्ग चंपा से बनारस तक और वहाँ से जमुना के किनारे-किनारे कौशांबी तक जाता था। इसके बाद स्थल मार्ग से कौशांबी से सिंधु-सौबीर तक व्यापार-मार्ग जाता था। एक तीसरा मार्ग श्रावस्ती

से राजगृह तक था। पश्चिमी तट पर भी समुद्र मार्ग भड़ोच और काठियावाड़ होकर लंका तक जाता था। पश्चिमी तटपर सोपारा भी महत्वपूर्ण बंदरगाह था। पूर्व में जहाज बंगाल में ताम्रलिप्ति के बंदरगाह से पूर्वी तट के अनेक बंदरगाहों से होते हुए श्रीलंका जाते थे। रोमिला थापर के अनुसार अशोक द्वारा कलिंग की विजय का एक कारण व्यापार की दृष्टि से कलिंग का महत्व था। महानदी और गोदावरी के बीच स्थित होने के कारण बंगाल और दक्षिण का व्यापार सुरक्षित नहीं था। कौटिल्य ने स्थलमार्गीय व्यापार की अपेक्षा नदी मार्गों से व्यापार को अधिक सुरक्षित माना है क्योंकि यह चोर डाकुओं के भय से अपेक्षाकृत मुक्त था। किन्तु नदियों से व्यापार स्थायी नहीं था।

स्थल मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ थीं, चोरों और जंगली जानवरों से विशेष भय था। मरुस्थल की यात्रा अत्यन्त कठिन थी। खतरों और कठिनाइयों के कारण व्यापारी काफिलों में संगठित होकर चलते थे। व्यापारियों को यातायात और सुरक्षा संबंधी सुविधाएँ प्राप्त थीं। यदि मार्ग में व्यापारियों का नुकसान हो जाए तो राज्य क्षतिपूर्ति करता था। इसके बदले व्यापारियों से अनेक शुल्क लिए जाते थे। अंतर्देशीय व्यापार की भाँति ही स्थल और जलमार्ग से विदेशों के साथ व्यापार को मौर्यों के सुसंगठित शासन से लाभ प्राप्त हुआ। यूनानी शासकों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध की वजह से पश्चिमी एशिया और मिस्र के साथ भारत के व्यापार के लिए अनुकूल वातावरण बना। एक मुख्य स्थल मार्ग तक्षशिला से काबुल, बैक्ट्रिया, और वहाँ से पश्चिमी देशों की तरफ जाता था।

समुद्री मार्ग भारत के पश्चिमी समुद्रतट से फारस की खाड़ी होते हुए अदन तक जाता था। भारत से और मिस्र से आनेवाली व्यापार-वस्तुओं का विनियम अरब सागर के तटवर्ती बंदरगाहों पर होता था। भारत में मिस्र को हाथीदाँत, कछुए, सीपियाँ, मोती, रंग, नील और बहुमूल्य लकड़ी निर्यात होती थी। नई बस्तियों के विस्तार से लोगों का आवागमन बढ़ा और इसके परिणामस्वरूप भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में संचार कायम हुआ। इससे

स्वाभाविकतः व्यापार में वृद्धि हुई। राज्य के प्रयत्न से गंगा घाटी के वन काटे गए और इस प्रकार तटों के साफ हो जाने से नदी यातायात में तेजी आई। बिंदुसार और अशोक के शासनकाल में शांति की नीति अपनाई गई और यूनानियों से मित्रतापूर्ण संबंध कायम किया गया इससे विदेशी व्यापार में भी वृद्धि हुई।

व्यापार के प्रारूप

व्यापार के अनेक तरीके विकसित थे। यह सहज रूप से उत्पादन के तरीके और इसके संगठन से जुड़ा हुआ था। उत्तर भारत में कारीगर उत्पादन या हस्तशिल्प उद्योग श्रेणियों के आधार पर संगठित था। यह व्यवस्था मौर्य काल के पहले से चली आ रही थी। मौर्यों के अधीन शिल्पियों की संख्या में भी वृद्धि हुई। प्रत्येक श्रेणी नगर के एक भाग में बसी हुई थी जिससे लिए श्रेणी के सदस्य एक साथ रह सकते थे और कार्य कर सकते थे। आमतौर पर उनमें पारिवारिक संबंध उपाया जाता था। ज्यादातर पुत्र अपने पिता के व्यवसाय को अपनाते थे और इस प्रकार हस्तशिल्प अधिकांशतया वंशानुगत होता था। उस काल के अभिलेखों में इस बात का उल्लेख है कि मौर्य काल के बाद ये श्रेणियाँ काफी शक्तिशाली हो गयीं। मेगस्थनीज ने भी श्रेणियों की गणना सात जातियों/वर्गों में की हैं। इस काल की श्रेणियों में प्रमुख थे – विभिन्न प्रकार के धातुकर्मी, बढ़ई, कुम्भकर, चर्मकार, चित्रकार, बुनकर आदि। उत्तरी काली पालिश के बर्तन हस्तशिल्प के उत्तम नमूने हैं। यह बर्तन बनाने को विशेषज्ञतायुक्त हस्तशिल्प था और गंगा घाटी के बाहर कम ही पाया जाता है। इससे पता चलता है कि देश के इस भाग में यह तकनीक विकसित हुई और शायद यह एक विशेष प्रकार की मिट्टी से ही बनाया जा सकता था। शिल्पियों के समान व्यापारी भी श्रेणियों में विभक्त थे। व्यापारियों का एक समूह किसी खास शिल्पी समुदाय से जुड़ा होता था, जिससे वितरण में सुविधा होती थी। वे भी शहर के किसी खास हिस्से में रहते थे, जो बाद में उनके व्यवसाय से सम्बद्ध हो गया। यह ध्यान देने की बात है कि मौर्यों के शासनकाल में राज्य प्रशासन ने व्यापार के संगठन पर भी ध्यान दिया। इस प्रकार के प्रशासनिक नियंत्रण से

उत्पादन और व्यापार में काफी सुधार हुआ। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रशासन ने प्रत्यक्षतः श्रेणी संगठन में हस्तक्षेप किया और उसे बदलने की कोशिश की। राज्य का नियंत्रण वस्तुओं के वितरण पर होता था और यहाँ तक राज्य खुद उत्पादक भी बना। दूसरे स्तर पर इसने कुछ शिल्पों को कुछ-कुछ लघु उद्योग के रूप में विकसित किया। इस क्रम में उसने अस्त्र बनानेवाले, जहाज बनानेवाले, पत्थर काटनेवाले आदि शिल्पियों को सीधे नियुक्त किया। इन्हें कर नहीं देना पड़ता था क्योंकि ये राज्य को अनिवार्य श्रम सेवा अर्पित करते थे। परन्तु अन्य शिल्पियों जैसे सूत कातनेवाले, सुनक तथा खानों आदि में काम करनेवालों को कर देना पड़ता था।

व्यापार और वस्तुओं के उत्पादन को व्यवस्थित करना उस काल की राजनीति का हिस्सा था। आर्थिक गतिविधियाँ और राजस्व पर अपनी पकड़ मजबूत बनाए रखने के लिए राज्य को यह नीति अपनानी पड़ी। आर्थिक गतिविधियों और राजस्व पर अपनी पकड़ मजबूत बनाए रखने के लिए राज्य को यह नीति अपनानी पड़ी शिल्पियों तथा व्यापारियों पर सरकार ने अपना नियन्त्रण रखने के लिए विभिन्न अध्यक्ष नियुक्त किए। मेगस्थनीज ने वाणिज्य अधीक्षक का जिक्र किया है, जो वस्तुओं को मूल्य निर्धारित करता था और बाजार में किसी वस्तु की मात्रा, बहुत अधिक आ जाने की स्थिति में हस्तक्षेप भी था। अर्थशास्त्र में उसका उल्लेख पण्यध्यक्ष के रूप में हुआ है। इसमें कई ऐसे अधिकारियों का जिक्र है, जो विभिन्न आर्थिक गतिविधियों की देख-रेख करते थे। समस्थाध्यक्ष बाजार की निगरानी करता था और व्यापारियों पर नियंत्रण रखता था। पौतवाध्यक्ष या माप-तौल अधीक्षक माप-तौल के स्तर पर सख्त नियंत्रण रखता था। कम तोलने वाले को दंड दिया जाता था। नवाध्यक्ष के अधीन राज्य की नावें रखती थी, जिनसे यातायात होता था। वह नदी यातायात पर नियंत्रण रखने में सहायता प्रदान करता था और उतराई भी वसूल करता था। सभी व्यापारियों को कर और चुंगी शुल्क देना पड़ता था, यह शुल्क वस्तु के मूल्य के $1/5^{\text{वाँ}}$ हिस्से से $1/25^{\text{वाँ}}$ हिस्से तक होता था। इस शुल्क की वसूली का काम शुल्काध्यक्ष करता

था। लाभ की दर भी निश्चित थी। देशज वस्तुओं पर 4 प्रतिशत और आयात वस्तुओं पर 10 प्रतिशत बिक्री कर भी लिया जाता था। मेगस्थनीज के अनुसार बिक्री कर न देने वाले को मृत्युदंड दिया जाता था। राज्य द्वारा उत्पादित वस्तुओं की देख-रेख दूसरे अधिकारीगण किया करते थे। इस प्रकार की वस्तुओं को राजपण्य करते थे। राज्य उसी वस्तु के उत्पादन में हाथ लगाता था जो उसके काम-काज के लिए अनिवार्य और जिनसे अच्छा राजस्व प्राप्त हो सकता था। कभी-कभी राज्य की वस्तुएँ निजी व्यापारियों द्वारा भी वितरित की जा सकती थी, क्योंकि उनकी वितरण-व्यवस्था सुव्यवस्थित थी और काफी दूर तक फैली हुई थी। इन परिवर्तन के बावजूद यह कहना गलत नहीं होगा कि अधिकांश शिल्पी या तो निजी तौर पर या श्रेणी-व्यवस्था के अंतर्गत काम करते रहे।

ये **श्रेणियाँ** इन उत्पादकों के बीच सौहार्द स्थापित करने का काम करती थीं, साथ-ही-साथ उन पर नियंत्रण भी रखती थीं। यहाँ तक कि शिल्पी भी श्रेणी में शामिल होना फायदेमंद मानते थे, क्योंकि अकेले काम करने में खर्च अधिक आता था और प्रतियोगिता काफी बढ़ जाती थी। राज्य को भी इन श्रेणियों से कर वसूलने में सुविधा होती थी। अंततः स्थानीय तौर पर केंद्रित होने और एक खास शिल्प में विशेषता हासिल करने के कारण उस व्यापार विशेष में खूब तरक्की हुई। परन्तु इस काल में श्रेणियाँ सम्पूर्ण भारत में नहीं फल-फूल रही थीं। खासकर दक्षिण में, मौर्य काल के बाद भी उनका उल्लेख मुश्किल से मिलता है। श्रेणियों के विकास के लिए शहरी वातावरण अधिक उपयुक्त था। अतः एक तरफ तो मौर्यों ने पहली बार सुव्यवस्थित राज्य-तंत्र कायम किया जिसने शायद मध्य गंगा क्षेत्र में उत्पादन को सफलतापूर्वक नियंत्रित किया; और दूसरी ओर उनके विजय अभियानों ने अखिल भारतीय स्तर पर व्यापारिक तथा धर्मप्रचारक (मिशनरी) गतिविधियों के दरवाजे खोल दिए। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रशासकों, व्यापारियों और जैन तथा बौद्ध साधु-सन्यासियों ने जो संपर्क स्थापित किए उनकी वजह से गंगा द्रोणी की भौतिक संस्कृति

का प्रसार साम्राज्य के सीमांतों पर स्थित अन्य क्षेत्रों में भी हुआ।

मध्य गंगा घाटी में व्यापारिक गतिविधियाँ

यदि हम साहित्यिक संदर्भों से पुष्ट पुरातात्विक साक्ष्य को आधार मानकर चलें तो ऐसा प्रतीत होगा कि गंगा द्रोणी की मौर्य अर्थव्यवस्था मुख्यतः लोहे के व्यापक उपयोग और रोपा धान के उत्पादन पर आधारित थी। इसके बने रहने में आहत सिक्कों, पकी ईंटों और छल्लेदार कुओं के चलन, उत्तरी काले पालिशदार भांड के प्रयोग तथा सबसे अधिक उत्तर-पूर्व भारत में नगरों के प्रसार का योगदान था। यूनानी इतिहासकार एरियन ने बताया है कि मौर्य काल में गंगा द्रोणी क्षेत्र में भौतिक संस्कृति का तेजी से विकास हुआ। दक्षिणी बिहार के समृद्ध लौह अयस्क तक आसानी से पहुँच होने की वजह से लोहे के औजारों का अधिकाधिक प्रयोग करते गए। हमें मौर्य कालीन सकोटर कुल्हाड़ियाँ, हँसिए और साथ ही हल की फाल मिली है। हालाँकि अस्त्र-शस्त्रों पर मौर्य राज्य का एकाधिकार था, किन्तु अन्य लौह उपकरणों का इस्तेमाल किसी वर्ग तक सीमित नहीं था। उनका निर्माण और उपयोग गंगा द्रोणी से साम्राज्य के दूरवर्ती भागों में भी फैला होगा। मौर्य काल के दौरान मध्य गंगा मैदानों में पहली बार पकी ईंटों का इस्तेमाल किया गया। बिहार तथा उत्तर प्रदेश में पकी ईंटों की बनी मौर्य इमारतें मिली हैं। मकान ईंटों के भी बनाए जाते थे और लकड़ी के भी। मौर्य काल में घनी वनस्पतियों की वजह से इमारती लकड़ी प्रचुर परिमाण में उपलब्ध थी। मेगस्थनीज ने मौर्य राजधानी पाटलिपुत्र में लकड़ी की इमारतों का उल्लेख किया है। खुदाई से यह पता चलता है कि बाढ़ और विदेशी हमले से बचाव के लिए लकड़ी के लट्ठों का महत्वपूर्ण सुरक्षा पंक्ति के रूप में उपयोग किया जाता था। आग में पकी ईंटों के उपयोग का साम्राज्य की बाहरी सीमाओं पर स्थित राज्यों में भी प्रसार हुआ। नम जलवायु और भारी वर्षा की वजह से मिट्टी या मिट्टी की ईंटों से विशाल और स्थाई इमारतें बनाना संभव नहीं था, जैसा कि हमें शुष्क क्षेत्रों में देखने को मिलती है। इसलिए पकी ईंटों के उपयोग का प्रसार बहुत बड़ा वरदान सिद्ध हुआ। आखिरकार

इस प्रवृत्ति ने साम्राज्य के विभिन्न भागों में शहरों के विकास में योग दिया। इसी प्रकार छल्लेदार कुएँ जो पहले-पहल गंगा द्रोणी में मौर्यों के शासनकाल में अस्तित्व में आए थे, साम्राज्य के केंद्रीय भाग को पार करके अन्य क्षेत्रों में भी फैले। छल्लेदार कुओं से घरेलू कामकाज के लिए पानी मिलता था, अतः नदी के किनारे बस्ती बसाना अब जरूरी नहीं रह गया था। घनी आबादी वाले इलाकों में ये कुएँ सोख्तों का काम देते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य गंगा की भौतिक संस्कृति के तत्त्व ही कुछ संशोधन के साथ उत्तरी बंगाल, कलिंग, सिंध, कर्नाटक और महाराष्ट्र में फैल गए। बांग्लादेश में बोगरा जिले में मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि में महास्थान अभिलेख मिला है और दिनाजपुर जिले के अंतर्गत बानगढ़ में उत्तरी काले पालिशदार मृद्भांड मिले हैं। उत्तरी काले पालिशदार मृद्भांड के ठीकरे कुछ अन्य स्थानों (जैसे पश्चिम बंगाल में 24.परगना जिले के अंतर्गत चंद्रकेतुगढ़) से भी मिले हैं। उड़ीसा में शिशुपालगढ़ में जो बस्तियाँ मिली हैं वे गांगेय समाज की सूचक मानी जा सकती हैं। ये बस्तियाँ तीसरी सदी ई०पू० में मौर्यकाल की मानी गई हैं। उनमें उत्तरी काले पालिशदार मृद्भांडों के साथ-साथ लोहे के औजार तथा आहत सिक्के मिले हैं। शिशुपालगढ़ चूँकि घैली तथा जौगढ़ के पास स्थित है, जहाँ भारत के पूर्वी समुद्रतट के किनारे-किनारे प्राचीन राजमार्ग पर अशोक के अभिलेख मिले हैं, अतः इस क्षेत्र में भौतिक संस्कृति मगध से संपर्क के परिणामस्वरूप पहुँची होगी। यह संपर्क चौथी सदी ई०पू० में प्रारंभ हुआ होगा जब ऐसा माना जाता है कि नंदों ने कलिंग पर विजय प्राप्त की थी।

किन्तु तीसरी सदी ई०पू० में अशोक की कलिंग-विजय के बाद यह और गहरा हुआ। संभवतः कलिंग युद्ध के बाद शांति स्थापना के एक उपाय के रूप में उसने उड़ीसा में कुछ बस्तियों का निर्माण किया, जो आगे चलकर उसके साम्राज्य में मिला ली गई। मौर्य काल में यद्यपि आंध्र और कर्नाटक में अनेक स्थानों पर लोहे के हथियार और औजार मिले हैं, फिर भी लौह-प्रौद्योगिकी के विकास में महापाषाणिय

शवाधानों के निर्माताओं को योगदान था, जो विभिन्न प्राकर के बड़े-बड़े प्रस्तर शवाधान (जिनमें गोलकार शवाधान भी शामिल हैं) बनाते थे। किन्तु इनमें से कुछ स्थानों के अशोक कालीन अभिलेख, उत्तरी काले पालिशदार मृद्भांड आदि, तीसरी सदी ई०पू० के हैं। उदाहरण के लिए कुछ मौर्यकालीन अभिलेख अमरावती में मिले हैं। भारत प्रायद्वीप में स्तरित (स्ट्रेटिफाइड) उत्तरी काले पालिशदार मृद्भांड के ठीकरों की सबसे बड़ी संख्या भी शायद यहीं मिली हैं। खास तरह की मौर्यकालीन पालिशवाले ग्रेनाइट स्तंभ में कई स्थानों पर अशोककालीन अभिलेख मिले हैं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि भौतिक संस्कृति के विभिन्न उपादान मौर्य-संपर्क द्वारा पूर्वी समुद्रतट के दक्कन के निचले पठारी क्षेत्र में पहुँचे। देश के कुछ भागों में इस्पात बनाने की कला भी मौर्य-संपर्क के माध्यम से पहुँची होगी। लगभग 200 ई०पू० या इससे भी पहले की कुछ इस्पात की बनी चीजें मध्य गंगा द्रोणी में मिली हैं। इस्पात के मिश्रण से बनी चीजों के फैलाव से कलिंग में खेती की बेहतर पद्धतियाँ अपनाई गई होंगी। साथ ही इससे ऐसी स्थितियाँ पैदा हुई होंगी जिनसे इस क्षेत्र में चेति साम्राज्य का उदय हुआ। सातवाहन साम्राज्य की भौतिक अंतर्वस्तु पर कुछ रूपों में मौर्य साम्राज्य की भौतिक अंतर्वस्तु का सीधा असर था। सातवाहन शासकों ने मौर्यों की कुछ प्रशासनिक इकाइयों को ग्रहण कर लिया और उनके समय में बौद्ध धर्म का वैसे ही प्रचार-प्रसार हुआ जैसे कि अशोक के साम्राज्य के केन्द्र-भाग में हुआ था।

लगभग 300 ई०पू० के आसपास और इसके बाद बांग्लादेश के कुछ भागों, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, और महाराष्ट्र अभिलेखों, यदाकदा प्राप्त उत्तरी काले पालिशदार मृद्भांडों के ठीकरों और आहत सिक्कों के अस्तित्व से यह प्रकट होता कि मौर्य काल में मध्य गंगा की भौतिक संस्कृति के घटकों का दूर-दूर तक प्रसार हुआ। यह प्रक्रिया कौटिल्य के निर्देशों के अनुरूप प्रतीत होती है। कौटिल्य की यह सलाह थी कि किसानों (जो स्पष्ट ही वैश्य थे) और शूद्र श्रमिकों (दोनों घनी आबादी वाले क्षेत्रों से स्थानांतरित किए जाएँ) की सहायता से नई बस्तियों को बसाया

जाए। परती जमीन को खेती के तहत लाने के लिए नए किसानों को कर में छूट दी जाती थी और पशु, बीज तथा धन से उसकी सहायता की जाती थी। राज्य ने इस आशा से यह नीति अपनाई थी कि उसने जो कुछ दिया है वह उसे वापस मिल जाएगा। इन बस्तियों से पिछड़े हुए क्षेत्रों में खेती के उन्नत तरीकों की शुरुआत हुई होगी। मौर्यों ने प्राचीरयुक्त शहरी बस्तियाँ भी बसाई होंगी ताकि दूरस्थ क्षेत्रों में भी सैनिक छावनी रखी जा सके। किन्तु नगर का उद्भव चाहे जैसे हुआ हो, अंततः यह बाजार का रूप ग्रहण कर लेता है और इस प्रकार जहाँ वह स्थित है उस क्षेत्र के आर्थिक विकास में योगदान देता है।

गंगा द्रोणी की भौतिक संस्कृति का प्रसार मध्य भारत के जनजातीय क्षेत्र के उपांतों में भी हुआ था। इस प्रक्रिया में संभवतः मौर्य शासन से काफी सहूलियत मिली। जनजातीय क्षेत्र पूर्व में छोटा नागपुर से पश्चिम में विंध्य पर्वतमाला तक फैला हुआ था। यह सुस्पष्ट है कि अशोक जनजातीय लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध बनाए हुए था। उन्हें धर्मपालन का उपदेश दिया जाता था। अशोक द्वारा नियुक्त धर्ममहामात्रों से उनका संपर्क रहता था। इस संपर्क से इन जनजातीय लोगों में उच्च संस्कृति के प्रसार का अवसर मिलता था। इस अर्थ में अशोक ने बाकायदा उत्संस्करण (संस्कृति के संक्रमण) की सुविचारित नीति का सूत्रपात किया। उसने कहा है कि धर्म के प्रसार से मानव देवताओं से मिलेंगे। इसका आशय है कि धर्म के प्रसार से मानव देवताओं से मिलेंगे। इसका आशय है कि जनजातीय तथा अन्य लोग कर अदा करनेवाले कृषक समाज की आदतों को अपना लेंगे। साथ ही उनके मान में पितृसत्ता तथा राजसत्ता के साथ-साथ साधु-संन्यासियों, पुरोहितों और अधिकारियों के प्रति सम्मान की भावना विकसित होगी।

अशोक की इस नीति को सफलता मिली। उसने दावा किया है कि व्याधों (शिकारियों और मछुआरों) ने हत्या करना छोड़ दिया है और वे धर्म का पालन करने लगे हैं। इसका अर्थ हुआ कि खाद्य संग्राहकों को समझा-बुझाकर स्थिर खेतिहार जीवन अपनाने के लिए तैयार किया गया

था। इस प्रकार मौर्य राजाओं की हर नीति राज्य के आर्थिक स्रोत बढ़ाने के उद्देश्य से निर्धारित होती थी क्योंकि मौर्य साम्राज्य को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक स्रोतों की आवश्यकता थी।

निष्कर्ष

मौर्यकालीन व्यापारिक विकास की व्यापकता को देखते हुए यह स्पष्ट है कि यह केवल आर्थिक घटना नहीं, अपितु सामाजिक-राजनीतिक एकीकरण का शक्तिशाली माध्यम सिद्ध हुआ। राज्य की दूरदर्शी नीतियों ने पूर्व-मौर्य परंपराओं को मजबूत आधार प्रदान किया, जिससे स्थल, जल एवं समुद्री मार्गों पर नियंत्रित प्रवाह संभव हो सका। प्रशासनिक हस्तक्षेप ने मार्गों की रक्षा, शुल्क-व्यवस्था एवं मूल्य-नियंत्रण के माध्यम से बाजारों को स्थिरता दी, फलस्वरूप उत्पादकता में उछाल आया।

इस काल में शिल्प-श्रेणियों का उदय उत्पादन की कुशलता का प्रतीक बना। धातुकर्म से लेकर मृदभांड-निर्माण तक, प्रत्येक क्षेत्र में विशेषज्ञता ने गुणवत्ता सुनिश्चित की। राज्य ने राजनीतिक शिल्पों को प्रत्यक्ष संरक्षण देकर राजस्व-प्रवाह को मजबूत किया, जबकि निजी उद्यमिता को प्रोत्साहित रखा। विदेशी संपर्कों, विशेषकर यूनानी राज्यों से, ने निर्यात को गति दी। दीक्षादीक्षा से रत्न तक भारतीय वस्तुओं का वैश्विक आदान-प्रदान प्रारंभ हुआ। कलिंग-विजय ने पूर्वी तट को मजबूत आधार प्रदान किया, जिससे दक्षिण-पूर्वी व्यापारिक धमनियाँ सक्रिय हुईं।

मध्य गंगा घाटी की भौतिक संस्कृतिक, लौह-प्रौद्योगिकी, पकी ईंटें, छल्लेदार कुएँ एवं आहत सिक्केकृसासाम्राज्य के कोने-कोने में फैली। यह प्रसार नंदवंशीय प्रयासों से प्रेरित होकर मौर्यों ने चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। नई बस्तियों की स्थापना, कर-छूट एवं संसाधन-प्रदान ने परती भूमि को उपजाऊ बनाया, जिससे कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था विस्तृत हुई। जनजातीय सीमांतों तक संस्कृति का संक्रमण अशोक की धर्म-नीति का सकारात्मक परिणाम था। कृषिकारियों को कृषक बनाना आर्थिक स्थिरता की कुंजी सिद्ध हुआ।

इस समग्र प्रक्रिया ने साम्राज्य को धन-संपन्नता प्रदान की, जो विशाल सेना, प्रशासन एवं धर्म-प्रचार के लिए अपरिहार्य थी। मौर्यों ने आर्थिक एकीकरण को राजनीतिक एकता का आधार बनाया, जिसका प्रभाव उत्तरवर्ती कालों में सातवाहनों एवं चेतियों जैसे साम्राज्यों में दिखा। भौतिक प्रगति ने सामाजिक गतिशीलता को जन्म दिया, श्रेणियाँ शक्तिशाली हुईं, नगर बाजार-केंद्र बने। अंततः, यह विकास भारतीय उपमहाद्वीप को वैश्विक व्यापारिक मंच पर स्थापित करने वाला प्रथम चरण था, जहाँ राज्य की सक्रिय भूमिका ने निजी प्रयासों को दिशा दी। मौर्योत्तर काल में भी इन नीतियों की छाप रही, जो आधुनिक भारत की आर्थिक नींव का प्रतीक बनी। इस प्रकार, मौर्यकाल ने व्यापार को सभ्यता के वाहक के रूप में परिवर्तित कर दिया, जिसने सांस्कृतिक संश्लेषण को गति प्रदान की।

संदर्भ सूची

- **अल्तेकर, ए.एस.** (2010). *राज्य और अर्थव्यवस्था मौर्य काल में* (हिंदी अनुवाद). पटना: मोतीलाल बनारसीदास. (मूल प्रकाशन 1950).
- **कौटिल्य.** (2000). *अर्थशास्त्र* (हिंदी अनुवाद: डॉ. गंगा शरण शर्मा). नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- **घोषाल, उदयचंद्र.** (2005). *प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था* (हिंदी अनुवाद). प्रयागराज: भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्. (संशोधित संस्करण).
- **चक्रवर्ती, रणवीर.** (1998). *प्राचीन भारत में व्यापार एवं वाणिज्य*. नई दिल्ली: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी.
- **जैन, हरविलास शास्त्री.** (2012). *मौर्यकालीन भारत*. जयपुर: राजस्थान ग्रंथागार. (पुनर्मुद्रण).
- **थापर, रोमिला.** (2002). *मौर्य साम्राज्य* (हिंदी अनुवाद). नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
- **पाण्डेय, विद्याधर.** (2003). *मौर्य साम्राज्य का इतिहास*. वाराणसी: भारतीय प्रकाशन भवन.
- **मजूमदार, आर.सी.** (2005). *प्राचीन भारत* (हिंदी संस्करण). कोलकाता: विद्याभवन.
- **मेगस्थनीज.** (1995). *इंडिका* (हिंदी अनुवाद: डॉ. विश्वनाथ कश्यप). प्रयागराज: हिंदी साहित्य सम्मेलन.
- **राय, राधाकुमुद.** (2010). *हिंदुस्तान का इतिहास (खंड 1: मौर्य युग)*. इलाहाबाद: किताबमहल. (पुनर्मुद्रण).

- **शर्मा, राम शरण.** (2018). *भारत का प्राचीन इतिहास*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (हिंदी संस्करण).
- **सिंह, उपेंद्र.** (2015). *प्राचीन एवं प्रारंभिक मध्यकालीन भारत का इतिहास* (हिंदी अनुवाद). नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.